हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
का
64वाँ अधिवेशन एवं परिसंवाद

कन्याकुमारी में आयोजित तीन दिवसीय समारोह

दिनांकः 18–20 मार्च, 2012

भक्ति आन्दोलन : पुनरावलोकन

सम्प्रेषणीयता की समस्या

– डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह,
निदेशक,
अयोध्या शोध संस्थान,
संस्कृति विभाग, उ0प्र0

भक्तिकाल

सन् 1400 से 1700 ई.

- कबीर, रैदास, गुरू नानक
- दादू दयाल, सुन्दरदास, रज्जन
- जायसी
- तुलसी
- सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास
- मीराबाई, रसखान
- रहीम

भक्तिकाल

सन् 1400 से 1700 ई.

भक्तिकाल के स्वर्गकाल बनने के कारण

- कवि, कविता लिखने के लिये कविता नहीं करते थे।
- कोई भी कवि समाज सुधारक होने का दावा नहीं करते।
- कोई राजनैतिक प्रतिबद्धता नहीं थी।
- आर्थिक रूप से अत्यन्त कमजोर परन्तु छोटे-छोटे कार्यों से जीवन यापन।
- सभी कवियों के मन में केवल आमजन की पीड़ा थी, जिसे आत्मा से परमात्मा तक विस्तारित किया।

भक्तिकाल के पुरावलोकन की आवश्यकता क्यों पड़ी

- भक्तिकाल साहित्य का स्वर्ण काल है।
- भक्तिकाल में वह श्रेष्ठ साहित्य सृजित किया गया जो हमारी विरासत है।
- मानव–मूल्यों एवं जीवन–मूल्यों की तलाश–मानवीय सभ्यता का धर्म है, जिसे भक्तिकाल के माध्यम से समझा जा सकता है।
- आधुनिक–पीढ़ी को जब आदर्श की नितान्त आवश्यकता है–भक्तिकाल सहायक हो सकता है।
- ये रचनाकारों के साहित्य–सृजन में प्रेरणा प्रदान कर सकता है।

पुरावलोकन की सीमायें

तथ्य :

- अवधी, ब्रज आदि लोक बोलियों में अधिकांश साहित्य उपलब्ध है।
- काव्य, महकाव्य, खण्ड काव्य में उपलब्ध है।

सीमायें :

- आज खड़ी बोली का ही स्थान परिवर्तित हो रहा है।
- आधुनिक पीढ़ी को गम्भीर पठन–पाठन में रूचि कम है।

हिन्दी साहित्य का भक्ति आन्दोलन भारतीय भाषाओं ही नहीं अपितु विश्व की समस्त भाषाओं में एक महत्वपूर्ण आन्दोलन रहा है। आलोचकों ने जब इसे हिन्दी का स्वर्णकाल कहा होगा तब उनके मन में इसकी सम्पूर्ण उपलब्धि रही होगी परन्तु आज इस स्वर्णकाल की आभा क्षीण पड़ रही है। 21वीं शताब्दी की अपनी चुनौतियां हैं, उनके सापेक्ष हिन्दी अपने को खड़ा नहीं कर पा रही है। इसके अनेक कारण और निवारण हैं परन्तु आज सागरों के संगम तट पर देश के विद्वान भक्तिकाल के पुनरावलोकन के लिए एकत्र हुए हैं। यह एक सुखद अनुभव है।

साहित्य, समाज, राजनीति और अर्थ नीति से प्रभावित होता है। भक्तिकाल का साहित्य भी इससे अलग नहीं है। आज के संदर्भ में यदि पुनरावलोकन किया जा रहा है तो उन कारणों पर अवश्य दृष्टि जानी चाहिए जिसके कारण भक्तिकाल स्वर्णकाल बन सका। अतीत में दृष्टिपात करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि भक्तिकाल के सभी कवि केवल कविता नहीं लिखते थे, वे न तो समाज सुधारक थे, न राजनैतिक व्यक्ति थे, और तो और कोई भी कवि बहुत धनाढ्य भी नहीं था। तब फिर क्या कारण है कि उनकी कविताओं से साहित्य भी प्रभावित हुआ, समाज भी प्रभावित हुआ, राजनीति में अकबर जैसा सम्राट राम-सीय सिक्का सोने में ढलवाकर बाबा तुलसी को समर्पित करते हैं। रहीम के एक हाथ में तलवार है तो दूसरे हाथ में बांके बिहारी की छवि। आज हम सब या तो खालिस साहित्यकार हैं या राजनीति में रहते हुए विशेष विचारधारा से प्रभावित होकर रचनाएं लिखते हैं या हम समाज को सुधारने का ठेका लेते हैं, फिर भी हमारी कविताएं एक दो समारोहों को छोड़कर किसी को उद्वेलित नहीं कर पातीं।

16 वर्षों तक हिन्दी साहित्य को उच्च शिक्षा में पढ़ाने का अत्यन्त संक्षिप्त अनुभव लेकर जब संस्कृति के कार्यक्षेत्र में पहुँचा तब वहाँ का परिदृश्य एकदम भिन्न था। प्रदर्शनकारी और प्रदर्श कलाओं के उन्नयन, उनके संरक्षण और प्रदर्शन के लिए अनेक छोटी-बड़ी संस्थाएं स्थापित थीं, जो अपना काम कर भी रहीं थीं परन्तु जिसमें अकादमिक या कहें साहित्यिक पुट का नितान्त अभाव था। अगर मैं अपनी बात इन दोनों को संयुक्त कर कहूँ तब सही मायने में बाबा तुलसी को समझा, महात्मा कबीर की वाणी की अनुगूँज सुनाई पड़ी, मीरा क्यों विष का प्याला पी गई समझ में आया, सूरदास अंधी आंखों से वह देख गये जो हम खुली आँखों से भी नहीं देख पाये। तुकाराम, नामदेव, घासीदास, बिट्ठल बाबा आदि अपने-अपने क्षेत्रों में क्यों इतने लोकप्रिय रहे?

पुनरावलोकन करते समय सबसे पहली दृष्टि उनकी समाज सापेक्ष क्रियाशीलता एवं भूमिका पर जानी चाहिए। सभी साहित्यकार अपनी सामाजिक भूमिका से गहरे तक जुड़े रहे और आज की पीढ़ी को हम तब तक उन्हें नहीं समझा सकते जब तक हम और हमारा साहित्य समाज से जुड़े। जैसे कपड़ा बुनने के बाद महात्मा कबीर आमजन को इकट्ठा कर रंग और सूत के प्रतीक को लेकर आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं, जैसे-बाबा तुलसी रामचरित मानस की गूढ़ चौंपाईयों को रामलीलाओं के माध्यम से आमजन के बीच पहुँचकर, व्यास के रूप में सहजता से प्रस्तुत करते हैं तो वह कोई कवि सम्मेलन या सामाजिक गोष्ठी न होकर हमारी अपने वाणी बनती है और युगों-युगों तक प्रभावित करती जा रही है।

पुनरावलोकन करते समय हमें इस बात को भी देखना होगा कि आज मीरा, सूर, जायसी, विद्यापति साहित्य के पठन-पाठन से लगभग अप्रासंगिक कर दिये गये हैं। बाबा तुलसी हासिये पर हैं, बस थोड़ा बहुत मुकाबला संत कबीर जी कर रहे हैं, परन्तु वे भी कब तक?

हिन्दी साहित्य से जुड़े हुए सभी मनीषी, विद्वान अपने आसपास जब तक ऐसा वातावरण नहीं निर्मित करेंगे, जब तक युवा पीढ़ी और बच्चे आपसे सीधे संवाद स्थापित नहीं करेंगे और वह संवाद मात्र परीक्षा प्रणाली तक सीमित न रह जाये तब तक भक्ति आन्दोलन को न तो समझा जा सकता है और न ही समझाया जा सकता है।

जहाँ तक समय की बात है तो आज भक्ति आन्दोलन के समाज से भी कठिन समाज और उसकी स्थिति है। असमानता की जितनी खाई आज है शायद उस समय नहीं रही होगी। जातिवाद, साम्प्रदायिकता, व्यभिचार, अनाचार सभी कुछ जो समाज की नकारात्मक शक्तियां हैं वे आज दुगुनी-चौगनी शक्ति से मुँह बाये खड़ी हैं। फिर भी हमारी नई पीढ़ी को कबीर, सूर, तुलसी, जायसी प्रभावित नहीं कर पाते। इन महान कवियों के कथ्य में कोई कमी नहीं है, सामाजिक स्थितियों में कोई कमी नहीं है, कमी है तो इसकी सम्प्रेषणीयता में।

अगर आप ध्यान से देखें तो सभी साहित्यकार कलाकार भी थे, जैसे-मीरा चित्तौड़गढ़ में राणा से विरोध कर आम आदमियों के बीच में भजन सुनाती थीं, ऐसे मस्तमौला कबीर काशी के घाट पर निर्गुण का मेला लगाते थे, बाबा तुलसी तो राम की कथा को राम के लोक मंगल को

जन-जन तक पहुँचाने के लिए अपना तुलसी मंच बनाकर राम की लीला का मंचन करते थे। इस प्रकार गायन, वादन, नृत्य, संगीत की परम्पराओं को आत्मसात् कर उसका आधार लेकर बड़ी आसानी से ये साहित्यकार हमारे बीच पहुँचे। जब तक हम इन्हीं आधारों को विकसित नहीं करेंगे हमेशा अवलोकन अथवा पुनरावलोकन की अवश्यकता बनी रहेगी।

सांस्कृतिक गतिविधियों का क्षेत्र बहुत कुछ शासन सत्ता के इर्दगिर्द रह गया है, जहॉ थके-हारे लोग मनोरंजन के लिए आते हैं। साहित्य और संस्कृति जिसके लिए मनोरंजन है, उससे आप जीवन संदेश की उम्मीद नही कर सकते। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है कि कुएं और प्यासे को एक कैसे किया जाये? यही शायद भक्तिकाल की भी समस्या है। कुआं है उसमें पानी है, दूसरी ओर पीने वाले भी हैं और प्यासे भी हैं। परन्तु सम्प्रेषणीयता के अभाव के कारण प्यासा कुएं के पास पहुँच नहीं पाता।

हमारे बीच स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक विद्यार्थियों की बड़ी संख्या है। इसी प्रकार ऐसे बच्चों और युवक-युवतियों की कमी नहीं जो पारम्परिक शिक्षा तो नहीं प्राप्त कर रहे परन्तु जिनकी आवश्यकता बनी हुई है। इनके बीच यदि भक्ति आन्दोलन के उन्हीं तरीकों का प्रयोग किया जाये जैसे इन महान कवियों ने अपने दौर में किया था तो निश्चित रूप से इसका लाभ प्राप्त होगा। एन0एस0एस0 एवं एन0सी0सी0 दो माध्यम हमारे पास हैं परन्तु सांस्कृतिक देश होने के बाद भी शैक्षणिक परिदृश्य में सांस्कृतिक विरासत का कोई प्लेटफार्म हमारे पास नहीं है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की आन्तरिक प्रतिस्पर्धाओं के अतिरिक्त

राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा कोई प्लेटफार्म नहीं है जिस पर बच्चे अपने प्रतिभा का परिचय दे सकें। यदि राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक विरासत की ऐसी कोई योजना संचालित की जा सके तो उसके माध्यम से इन महान कवियों के संदेशों को बड़ी आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

ललित कलाओं में गायन, वादन, नृत्य, लोक, शास्त्रीय और लोकप्रिय तीनों विधाओं में प्राप्त होता है। इसी प्रकार प्रदर्श कलाओं में लोक चित्रकला, आधुनिक चित्रकला, लघु चित्रशैली के साथ-साथ समस्त हस्तशिल्प भी सम्मिलित होते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इन सभी श्रेणियों में भक्तिकाल के संदेश और उनके आदर्श कूट-कूट कर भरे हुए हैं। यह कहना अतिशयोक्ति हो सकता है परन्तु यह सच है कि कलाएं यदि प्रभावित हुई हैं तो सबसे ज्यादा भक्तिकाल से। बस 21वीं शताब्दी में आकर इनका स्वरूप बदल गया है। जैसे-रहीम सेनापति के साथ-साथ कवि भी थे, जैसे-कबीर जुलाहे के साथ-साथ निर्गुण गायक भी थे, वैसे अब नहीं रह गया है। भारत पर जब विदेशी आक्रमण प्रारम्भ हुए तब सैनिक खेत के बगल में युद्ध करते थे और कृषक युद्ध क्षेत्र के समीप खेती में मगन रहता था। जब युद्ध जीतकर एक राजा विजयी होता था तो किसान उसे अपना कर पहुँचाने लगता था। कोउ नृप होय हमय का हानी वाली बात थी और हम पराधीन हो गये। ठीक इसी प्रकार आज हमारे समय में भी हो रहा है कि कलाकार अलग है जो केवल उसे रोजी-रोटी का माध्यम मानता है। सरकार की नीतियां भी इसी को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं कि कलाकारों के उत्थान के लिए क्या कुछ किया जाये। दूसरी ओर साहित्य से सरोकार रखने वाला युवक जब जानता है

कि कुछ प्रश्नों के उत्तर दे देने से काम चल जायेगा तो वह मूल्यांकन इस रूप में करता है कि कबीर पर 10 नम्बर के प्रश्न आते हैं और तुलसी पर 5, मीरा और सूर पर तो पिछले 05 वर्षो से प्रश्न किये ही नहीं गये। ऐसी भयावह स्थिति में पुनरावलोकन की नितान्त आवश्यकता है।

भक्तिकाल न केवल काल गणना है, न साहित्य सृजन के लिए साहित्य लिखा गया है, न राजनैतिक आन्दोलन है, न समाज को बदलने का कोई महान संकल्प है। यह तो केवल संतो की वह वाणी है जो सबके दुख में दुखी होती है और सबके कल्याण के लिए आत्मा से परमात्मा को मिलन का मार्ग सुझाती है। यही जीवन का सत्य है, यही जीवन का सार है।

भक्तिकाल मानव जीवन का काल है, यह मानकर जब हम 21वीं शताब्दी में आगे बढ़ेंगे तब वास्तव में आज के अन्धकार में एक दीया जलेगा। इसकी शुरूआत बच्चे से लेकर युवकों तक लक्ष्य बनाकर की जाये। आधुनिक माध्यमों का खुलकर प्रयोग किया जाये जिसमें कम्प्यूटर, मोबाईल, टैबलेट आदि सम्मिलित हों। गूगल सर्च करने पर सबसे कम जानकारी भक्तिकाल की प्राप्त होती है। हम सब प्रण करें कि छोटी से छोटी बात भी इन्टरनेट पर डालें जिससे युवा पीढ़ी आवश्यकता पड़ने पर सर्च कर सके। क्वीज प्रतियोगिताएं तो करायी जायें, रामचरित मानस गायन और अन्ताक्षरी प्रतियोगिता आकर्षक पुरस्कारों के साथ प्रस्तुत की जायें। सुर संग्राम, महुआ और न जाने कितने प्रकार के टेलीविजन धारावाहिक आते हैं, उस पर भी पकड़ बनानी होगी।

हिन्दी साहित्य को और उसके भक्तिकाल को हिन्दी की उपबोलियां और बोलियों ने भी शक्ति प्रदान की है। इन बोलियों और उपबोलियों के साहित्य को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाये। इसी के साथ-साथ अहिन्दी भाषी भाषाओं में अनुवाद की परम्परा विकसित की जाये। भक्तिकाल के सभी कवियों के अनुवाद भारत की सभी भारतीय भाषाओं में किये जायें और इनके करने वाले युवक-युवतियों को आकर्षक अनुदान भी प्राप्त हो। भारतीय भाषाओं में उपलब्ध साहित्य को हिन्दी में अनुवादित किया जाये। हिन्दी भाषी विद्यार्थी को दक्षिण भारत की किसी एक बोली को पढ़ना अनिवार्य किया जाये। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में जब कोई विद्यार्थी सीना तान कर यह कहे कि तमिल के भक्ति साहित्य को पढ़ने मैं 10 वर्ष चेन्नई में रहा तब समझिए कि हिन्दी का भक्तिकाल आज प्रासंगिक हो गया।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल विदेशी भाषाओं में भी अनुवादित हुआ है। फादर कामिल बुल्के रामचरित मानस के अनुवाद को डच भाषा में पढ़कर ही भारत की ओर आकर्षित हुए और यहीं के रह गये। आज जब ग्लोबल दुनिया है जो अर्थ तंत्र पर टिकी है जो व्यापार वाणिज्य के लिए भारत की ओर निहार रही है, इस सुअवसर का लाभ उठाया जा सकता है। बलिया के गांव में यदि फेंच भाषा जानने वाला विद्यार्थी रामचरित मानस को फेंच में गायेगा तो निश्चित फेंच गुयाना पहुँचने की उसकी सम्भावनाएं बढ़ जायेंगी। जब यह बात हम प्रचारित करेंगे और उसका लाभ नई पीढ़ी को मिलेगा तो निश्चित रूप से भक्ति आन्दोलन का विकास भी होगा।

विश्व के उन देशों में जहां भारतीय रहते हैं, रामायण और गीता के साथ-साथ रामचरित मानस भी पढ़ी और गायी जाती है। इनमें से अधिकांश देशवासी हिन्दी बिल्कुल नहीं जानते। भक्तिकाल को आधार बनाकर हम अपने अन्य महाकवियों की रचनाओं को भी जो निश्चित रूप से पूरी दुनिया को प्रभावित करेंगी बड़ी आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

पुनरावलोकन की इस बेला में यदि एक भी सुझाव सटीक निशाने पर लगे तो यह सम्मेलन के साथ-साथ हमारी अपनी भी एक निजी उपलब्धि होगी। संस्थान की स्थापना संस्कृति विभाग,उ0प्र0 द्वारा कमोवेश इन्हीं उद्देश्यों के लिए की गयी है जिसमें थोड़ा बहुत प्रयास किया जा रहा है। यदि आप सब का आशीर्वाद प्राप्त होगा तो यह प्रयास समुद्र की भांति और विस्तार प्राप्त कर सकेगा।